E-ISSN: 2706-8927
P-ISSN: 2706-8919
www.allstudyjournal.com
IJAAS 2021; 3(1): 474-480
Received: 18-11-2020
Accepted: 22-12-2020

अर्चना कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

Corresponding Author:
अर्चना कुमारी
शोधार्थी, विश्वविद्यालय हिन्दी विभाग, ल०ना०मिथिला विश्वविद्यालय, कामेश्वरनगर, दरभंगा, बिहार, भारत

प्रदीप सौरभ के उपन्यास मुन्नी मोबाईल में वर्णित गोधराकांड का चित्रण

अर्चना कुमारी

सारांश
उत्तर आधुनिक युग में इंसान साम्प्रदायिकता के अभिशाप से ग्रसित है। यह अभिशाप सिर्फ भारत में ही नहीं बल्कि सम्पूर्ण विश्व में विकराल महामारी की तरह फैला है। साम्प्रदायिकता के वजह से धर्म खतरे में पड़ चुका है और धर्म निरपेक्षता विध्वंस के अत्यन्त दुखान्त दौर से गुजर रहा है। धर्म के नाम पर राजनीति करनेवाले सभी दल आज साम्प्रदायिकता को एक कारगर हथियार के रूप में इस्तेमाल कर रहे हैं, जिसके कारण राष्ट्रीय एकता और अखण्डता हाशिये पर नजर आती है। धार्मिक कट्टरपंथी विचारधाराओं से ग्रसित लोगों के कारण इस वसुंधरा को अपनी ही संतानों के लहू से रंजित होना पड़ा है। यह समस्या तत्कालीन भारत की ही नहीं है अपितु यह 1895 और 1899 में कज्हुहुमालाई और सिवाकाली में होनेवाले दंगों से शुरू हुई, और 2020 में दिल्ली में घटित साम्प्रदायिक दंगों तक चली आई हैं। इसके मध्य अलग-अलग शहरों में कई साम्प्रदायिक दंगे हुए, जिनमें कलकत्ता के दंगे (सन् 1946), सिक्ख विरोधी दंगे (1984), कश्मीर दंगे (1986), वाराणसी दंगे (1989), भागलपुर दंगे (1989), कश्मीरी पंडितों का नरसंहार (1991), मुम्बई दंगे (1992), गुजरात दंगे (2002), अलीगढ़ दंगे (2006), देगंगा दंगे (2010), असम दंगे (2012), मुजफ्फरनगर दंगे (2013) आदि शामिल हैं।

कूटशब्द: गोधराकांड, साम्प्रदायिकता, धर्म निरपेक्षता, धार्मिक कट्टरपंथी

प्रस्तावना
साम्प्रदायिकता के विष से साहित्य भी अछूता नहीं रहा है। साहित्य के क्षेत्र में राजनीति प्रमुखतः दो रूपों में अपना छाप छोड़ती है। पहला, यदि कोई रचनाकार किसी एक राजनीतिक विचारधारा को प्रोत्साहित करता है तो वह विधा या उस वर्ग की रचनाएँ प्रचारवादी रचनाएँ बनकर रह जाती हैं। परन्तु दूसरी तरफ उस वर्ग का साहित्य जो देशकाल, वातावरण के अनुरूप समसामयिक राजनीति एवं इससे उत्पन्न साम्प्रदायिकता को अपने साहित्य में अभिव्यक्त करता है, तो ऐसा साहित्य पूर्वाग्रह से मुक्त युग का सच्चा दर्पण होता है क्योंकि इसमें लेखक या लेखिका के हृदय में उत्पन्न पीड़ा को साहित्य में चित्रित किया जाता है। राष्ट्रकवि रामधारी सिंह दिनकर के शब्दों में– "लेखक राजनीति में पड़े या न पड़े, यह प्रश्न विचारणीय है, किन्तु प्रत्येक राजनीतिक दल किसी-न-किसी लेखक को अपना मानता है। लेखक को राजनीति में पड़ने पर क्या खतरा

दिखाई पड़ता है? वह यह कि दल के आग्रह में पड़कर वह शायद सम्पूर्ण सत्य बोलने से चूक जाए। साहित्य जिस प्रकार स्वतंत्र होकर बोलना चाहता है वह स्वतंत्रता किसी भी राजनीतिक दल से हमेशा अनुकूल नहीं बैठती और राजनीति का सर्वथा त्याग किया जाए, तो साहित्य के हाथ से एक कारगर यंत्र छूट जाता है। रास्ता एक ही है कि साहित्यिक राजनीति में जाने पर भी दल से मतभेद होने पर भी अपनी ही बात करें..... तन सौंपे मन देय नहि सती कहावै सोय।"[1]

राजनीति और साहित्य के संबंध में अपना विचार प्रकट करते हुए नेमिचन्द्र जैन जी ने कहा है– "कुछ उपन्यासों में राजनीतिक परिस्थितियों, परिवर्तनों या हलचलों का सीधा प्रस्तुतीकरण होता है। इसमें व्यक्ति उस उद्देश्य को पूरा करने का उपादान भर है। इसमें राजनीतिक आन्दोलन या परिस्थितियाँ व्यक्ति की स्थिति को नियामक शक्ति का रूप देती हैं, जिनके थपेड़ों में पड़ा व्यक्ति असहाय इधर-उधर चक्कर खाता रहता है। कुछ उपन्यासों में राजनीतिक कार्य-कलाप व्यक्ति और समुदाय का परिवेश मात्र है।" [2]

प्रदीप सौरभ जी से साक्षात्कार करने के दौरान उन्होंने यह बात स्पष्ट रूप से रेखांकित की कि गुजरात दंगों के दौरान उन्होंने जो अनुभव किया और जिस माहौल से गुजरे थे, उन घटनाओं को एक उपन्यास के रूप में परिवर्तित करना चाहते थे। परन्तु इसका समाज पर कोई दुष्प्रभाव न पड़े, इसलिए उन्होंने इन घटनाओं को मुन्नी मोबाइल नामक उपन्यास में एक अध्याय के रूप में प्रस्तुत किया। जहाँ समाज और समाज से जुड़ी कुरीतियों का वर्णन करते हुए आँखों देखे गोधराकांड को पाठकों के सामने सहज रूप से प्रस्तुत किया गया है।

जिस तरह से भीष्म साहनी- (तमस), कृष्णा सोबती- (जिन्दगीनामा), राही मासूम रजा- (आधा गाँव) आदि अनेक उपन्यासकारों ने अपने-अपने उपन्यासों में साम्प्रदायिकता का जिक्र किया है, उसी तरह प्रदीप सौरभ जी ने 'मुन्नी मोबाइल' उपन्यास में साम्प्रदायिकता से जन्मे गुजरात के गोधराकांड का वर्णन किया है। ऐसा दंगा जिसका नाम लेने से रोंगटे खड़े हो जाते हैं, दिल दहल जाता है, नींद और चैन छिन जाते हैं, वैसे दंगों के बीच रहकर सौरभ जी ने अपनी कलम की ताकत से बेजोड़ लेखन किया है। बात उस समय की है जब अयोध्या से रामलला के दर्शन कर साबरमती एक्सप्रेस में सवार होकर अहमदाबाद लौट रहे श्रद्धालुओं के एस. 6 डिब्बे में आग लगी थी। आग किसने लगाई, इसका पुख्ता सबूत किसी के पास नहीं था। हिन्दुओं का कहना था कि आग मुसलमानों ने लगाई तो सेक्यूलरिस्टों का कहना था कि आग स्वयंसेवकों ने लगाई। इस सबूत की ठोस जानकारी प्राप्त करने के लिए बड़े-बड़े न्यायाधीशों ने 'एँड़ी चोटी' का जोर लगा दिया। फिर भी कारणों का पता नहीं चला। इस बात का उल्लेख करते हुए सौरभ जी ने कहा– "जस्टिस बनर्जी से लेकर जस्टिस नानावती तक कारणों की तह में गये और बिना गये अपने-अपने फैसले दे चुके हैं। सेक्युलरिस्ट कहते हैं कि कारसेवकों ने खुद आग लगा ली। हिन्दू बिग्रेड कहती है कि मुसलमानों ने आग लगाई।"[3]

ठंढे बस्ते में पड़े हुए कार्य को आगे बढ़ाने के लिए कुछ न कुछ भूमिका निभानी पड़ती है। गोधरा काण्ड तो एक बहाना था जिसकी भूमिका अदा करके राजनीति में तूफान लाना चाहते थे।

आस्था बहुत ही बलवान और साथ-ही-साथ अंधी होती है, न जाने कब सर्वधर्म समभाव में विश्वास रखने वाले लोग एक उग्र भीड़ का रूप धारण कर लें, यह कोई नहीं जानता। जैसा आनंद भारती का मानना है कि बाबरी मस्जिद का विध्वंश पहले से ही प्रायोजित था, जरूरत थी एक भड़कावयुक्त नारे की। उस समय अयोध्या में सिर्फ एक ही नारा गूंज रहा था– "बाबरी मस्जिद को एक धक्का और दो।"[4]

आस्था में लीन व्यक्ति तर्क से परे होता है, वह सिर्फ और सिर्फ अपने धार्मिक स्थल पर विजय प्राप्त करना चाहता है। ऐसा ही हुआ था बाबरी ध्वंस के दौरान हिन्दू मान्यताओं के अनुसार जिस जगह बाबरी मस्जिद थी, उसी जगह भगवान श्रीराम का जन्म हुआ था। हिन्दू उस जगह श्री रामलला का भव्य मंदिर निर्माण करवाना चाहते थे। हिन्दुओं की राम जन्म भूमि से संबंधित आस्था के संदर्भ में सौरभ जी ने कहा– "ऐसी आस्था जो तर्कों से परे थी उसके लिए जरूरी था कि बाबरी का ध्वंस किया जाये।"[5]

पत्रकार के कथनानुसार बाबरी मस्जिद को मटियामेट करने की पटकथा तो पहले से लिखी जा चुकी थी। जिसके सूत्रधार कहीं-न-कहीं लालकृष्ण आडवाणी थे, जो तत्कालीन समय से दो साल पहले सोमनाथ से अयोध्या तक राम जन्मभूमि पर

मंदिर निर्माण के लिए 'संकल्प' रथयात्रा निकाल चुके थे। वातावरण भी राममय हो चुका था। चारों तरफ से नारे गूँज रहे थे। लेखक के शब्दों में– "'बच्चा-बच्चा राम का, जन्मभूमि के काम का', 'सौगंध राम की खाते हैं मंदिर वहीं बनायेंगे', 'एक धक्का और दो, बाबरी को तोड़ दो', 'बाँध लंगोटा, थाम के सोटा, चलो अयोध्या'।"[6]

कहते हैं, किसी ऊँची जगह पर पहुँचने के लिए सीढ़ी की जरूरत होती है। पत्रकार आनंद भारती के अनुसार बीजेपी जैसी छोटी पार्टी को देश की सत्ता और सिंहासन पर बैठने के लिए रथयात्रा और राम नाम रूपी सीढ़ियों की जरूरत पड़ी। हुआ भी कुछ ऐसा ही। सोमनाथ से रथयात्रा जैसे-जैसे आगे बढ़ रही थी, वैसे-वैसे अपने अस्तित्व के लिए लड़ रही बीजेपी हिन्दु जनमानस में अपना वर्चस्व स्थापित कर रही थी। रथयात्रा का अगुवाई कर रहे आडवाणी एक जाने-माने चेहरे के रूप में उभर रहे थे। यह यात्रा बाबरी मस्जिद के ध्वंस होने से अपने गन्तव्य तक पहुँच चुकी थी। अब प्रदर्शनकारी के सामने यह चुनौती आन पड़ी थी कि विवादित जगह पर रामलला का मंदिर कैसे बनाया जाय? क्योंकि तत्कालीन केन्द्र सरकार ने विवादित ढाँचे पर यथास्थिति बनाये रखने के लिए आदेश दे दिया था। रामनाम पर काफी तादाद में लोगों की भागीदारी ने इस आन्दोलन को जेपी आन्दोलन से भी बड़ा आन्दोलन बना दिया था। बाबरी मस्जिद का तो ध्वंस हो गया, किन्तु आगे का काम कुछ नहीं देखकर लेखक ने कटाक्ष करते हुए कहा– "चार साल से अधिक समय तक भारतीय जनता पार्टी के इंजीनियर राम नाम की माला जपते रहे।"[7]

जब-जब साम्प्रदायिकता की आग भड़कती है, तब-तब किसी न किसी राजनीतिक पार्टी को फायदा होता है और ऐसी ही संजीवनी प्राप्त हुई भारतीय जनता पार्टी को, जो अपनी सरकार बनाने में सफल रही। रामनाम का परचम थामे भारतीय जनता पार्टी ने जब सत्ता के गलियारों में एक मुकाम हासिल कर लिया, तब भगवान राम को अपने एजेंडे में से कहीं किनारा कर दिया। लेखक के अनुसार– "इसी के साथ राम कहीं खो गये। अब भी खोये हुए हैं। उन्हें अभी तक भव्य मंदिर का इंतजार है।"[8]

इसके बाद तत्कालीन मनोनीत प्रधानमंत्री अटल बिहारी वाजपेयी जो कभी हिन्दुत्व और आर.एस.एस. जैसे हिन्दूवादी संगठनों के समर्थक थे। आज वह अपनी यही छवि तोड़ना चाहते थे। वह चाहते थे कि हर वर्ग हर समुदाय उन्हें प्रधानमंत्री के तौर पर सर आँखों पर बिठाये। राजनीति का खेल शंतरज की तरह होता है, कब पासा पलट जाए, इसका अंदाजा लगाना मुश्किल है। राजनीति में न तो कोई किसी का मित्र होता है, और न ही शत्रु क्योंकि जब तक कोई पार्टी से अलग रहता है तो उसकी खामियों को उजागर किया जाता है, परंतु पार्टी में शामिल होते ही तमाम खामियों को नजर अंदाज करके उसे महिमांडित किया जाता है। ऐसा ही हुआ था हिमाचल प्रदेश चुनाव के दौरान जब तक भारतीय जनता पार्टी से पूर्व केन्द्रीय संचार मंत्री सुखराम पार्टी से अलग थे, उस समय सुखराम के घोटाले को उजागर करने के लिए भारतीय जनता पार्टी ने कोई कसर नहीं छोड़ी। कई दिन संसद भी बंद रही। किंतु सुखराम के पार्टी में शामिल होते ही भारतीय जनटा पाटी उसकी सभी खामियों को भूल कर उसे महिमामंडित करने लगी। इसी दूषित राजनीति का उल्लेख करते हुए सौरभजी ने कहा है– "सुखराम के घोटाले के खुलासे के वक्त संसद में भारतीय जनता पार्टी ने खूब हो-हल्ला मचाया था। कई दिन संसद को ठप्प कर दिया था। लेकिन हिमाचल प्रदेश में सरकार बनाने के लिए उनका समर्थन लेने में उसे शर्म नहीं आई। पार्टी की चाल, चरित्र और चेहरा ही सत्ताखोर है तो उसे शर्म कैसे आती।"[9]

उपन्यासकार की मानें, तो साबरमती एक्सप्रेस अग्निकांड में हुए नरसंहार के बाद तत्कालीन सरकार के द्वारा मृतकों की लाश पर भी राजनीति की गई। मृतकों का पोस्टमार्टम करने के बजाय उसे साम्प्रदायिकता का चोला पहनाने के लिए लाशों को अहमदाबाद ले जाया गया। जिस वक्त गोधरा कांड को होने से रोका जा सकता था, उस समय राजनीतिक लाभ के लिए सैकड़ों बलि की रूपरेखा तैयार की जा रही थी। इसी संदर्भ में प्रदीप सौरभजी ने पत्रकार के माध्यम से यह कहने की हिम्मत की है कि– "मोदी गमगीन मुद्रा में थे। उन्होंने गोधरा में मृतकों का पोस्टमार्टम कराने के बजाय लाशों को

अहमदाबाद ले जाने का फैसला किया। यदि मोदी यह फैसला नहीं करते तो सैकड़ों लोगों की जान बचाई जा सकती थी। असल में वह लाशों पर राजनीति की रणनीति बना रहे थे। पूरा खाका उनके दिमाग में खिंच चुका था।"[10]

कैसा धर्म कैसी राजनीति और किसे पता था धर्म के नाम पर मौत मिलेगी और ऐसा ही हुआ था अयोध्या से लौट रहे कारसेवकों के साथ। जब एक दर्जन लाशों को लेकर हिन्दू ब्रिगेड के कार्यकत्ता उसके परिजनों को सौंपने गये तो वहाँ की आक्रोशित भीड़ उस पर बरस पड़ी। स्थिति नियंत्रण में नहीं देख बजरंग दल के प्रदेश अध्यक्ष हरेश भट्ट ने अपनी बात बदलते हुए उन लोगों को सांत्वना दी और भरोसा दिलाया। लेखक के शब्दों में– "सौगंध खाते हैं कि जिन्होंने हमारे लोगों को इस बेरहमी से मारा है, हम उनसे बदला लेकर रहेंगे। उनके इस वाक्य में भावों का ज्वार था।"[11]

इंतजार में पहले से था बस जरूरत थी एक इशारे की और हुआ भी ऐसा ही भाषण सुनते ही गुजरात में विनाश का आवाहन हो गया। आदेश मिलते ही गुस्साए हिन्दू ब्रिगेड के कार्यकत्ता बड़ी तादाद में हथियार लेकर घर से बाहर निकल पड़े। पत्रकार के अनुसार– "इस तरह मोदी की लाशों की राजनीति का पहला अध्याय सफल रहा।"[12]

इसी बीच बची हुई लाशों को उनके शहर भेजकर शहीदों की तरह जुलूस निकाला गया। सौराष्ट्र को छोड़कर सारा गुजरात आग की चपेट में आ गया। पत्रकार का मानना है कि ये सारी विनाश लीला राम के नाम पर रची गयी। हमला जय श्री राम के जयकारा के साथ हो रहा था और निशाने पर मुसलमान होते थे।

साम्प्रदायिकता की आग ज्वालामुखी की तरह तेज और विकराल होती है, जिसमें इन्सानियत की भावना खत्म हो जाती है, जिस वजह से लोगों के मन में सिर्फ बदला लेने की भावना उत्पन्न होती है और यही भावना गोधरा कांड के समय में भी हुई थी। दंगा में घायल हुए हिन्दू-मुसलमानों के लिए स्वास्थ्य सेवा भी साम्प्रदायिकता के आधार पर बँट गई थी। जहाँ मुसलमान को वी.एस.अस्पताल में रखा जाता वहीं हिन्दू को सिविल अस्पताल में। इतना ही नहीं मुस्लिम घायलों के साथ आए हुए उसके परिजनों को भी नहीं बख्सा जाता था। उसे बेरहमी से पीटा जाता। पिटाई करते समय दंगाई चिल्ला-चिल्ला कर बोल रहे थे कि इनको इलाज का कोई हक नहीं है। इन लोगों ने हमारे आदमी को मारा है।

कहते है कि राजनीतिक सपोर्ट किसी भी समुदाय को ताकतवर बना देती है। समय इतना बलवान है कि मौंका सभी को देता है। 1969 से लेकर 1992 तक काँग्रेस शासन के चलते जब कभी हिन्दू-मुस्लिम दंगा होता था, तो मुस्लिम समुदाय का पलड़ा भारी होता था। अपने वोट बैंक को बचाने के लिए काँग्रेस मुसलमानों का संरक्षण करती थी। समय करवट ले चुका था, जो राजनीतिक पलड़ा कभी मुसलमानों की तरफ झुका होता था, आज वही पलड़ा मुसलमानों की ओर शीष नवाए खड़ा था। मोदी और तोगड़िया की जोड़ी उन पुराने जख्मों का बदला चुन-चुन कर लेना चाहती थी। उस समय शासन भी हिन्दू ब्रिगेड के हाथ में था और दंगाई तो अपना था ही। साम्प्रदायिक आग जब भड़कती है तब कितनी जानों की आहुति देती है कहना कठिन है। पत्रकार की मानें तो उनका कहना है– "मोदी सरकार ने दंगों की स्क्रिप्ट लिख ली थी। पुलिस द्वारा दंगाइयों को खुली छूट देना तय हो चुका था। खून का बदला खून।"[13]

ऐसा ही हुआ पुलिस की मौजूदगी में हमला हुआ। लाशों की ढेर लगी। बड़ी-से-बड़ी दुकानें, सोसाइटी को आग के हवाले कर दिया गया। बूढ़े, जवान, बच्चे जो भी नजर आता, उसे काट दिया जाता। जिस समय गिन-गिनकर मुसलमानों को मारा जाता था, और उसी समय हिंदू के घर या दुकानों को बचाया जाता था। इससे लग रहा था कि मुसलमानों की आर्थिक तरक्की इन लोगों को सहन नहीं होती, इसलिए खासकर चेलिया समुदाय के लोगों को निशाना बनाया जा रहा था। इसे देखकर लग रहा था कि गोधराकांड नहीं भी होता तो भी गुजरात में दंगा होना तय था। गुजरात मुसलमान के लिए अभिशाप बन गया था। दाढ़ी और टोपी रखना किसी गुनाह से कम नहीं था। दाढ़ी और टोपी देखते ही मौत के घाट उतार दिये जाते। इस बात का उल्लेख करते हुए सौरभजी लिखते

हैं– "मुसलमान पाकिस्तानी हो गये थे और हिन्दू राजा हिन्दुस्तानी। एक देश में दो देश।"[14]

दंगा इतना तीव्र था कि थमने का नाम ही नहीं ले रहा था। राहत शिविर में शरण लिए लोग भी अपने आपको असुरक्षित समझते थे। मुस्लिम इलाका पाकिस्तान बन गया था और हिन्दू इलाका हिन्दुस्तान। डर से सहमे लोग बीच सीमा की रखवाली करते और अपनी सुरक्षा के लिए पत्थर का ढेर लगा लिया था। देखने में लग रहा था लोग पाषाण युग में जी रहे हैं। हमलावर के आने का संकेत था रात को सभी के घरों में एक साथ बत्तन बजना। बत्तन बजते ही संकेत मिलता था कि हमलावर आ गया, पत्थरबाजी शुरू करो।

राजनीति के क्षेत्र में कोई भी नेता अपनी बात पर अडिग नहीं रहता। बात से मुकरने में देर नहीं लगती। लोगों को विश्वास दिलाने के लिए वे अपनी हर अदा निभा लेते हैं, किंतु सामने से हटते ही बात बदलने में तनिक भी देर नहीं लगती। ऐसे ही गुजरात दंगों के समय तत्कालीन राज्य सरकार पर कई तरह के सवाल उठाये जा रहे थे। तमाम जानकारी के लिए तत्कालीन प्रधानमंत्री राहत शिविर पहुँचे। उन्होंने पीड़ितों को सांत्वना देकर अपनी भावनाएँ प्रकट कीं और कहा– "अब से कुछ देर बाद मैं विदेश यात्रा के लिए रवाना होनेवाला हूँ। मुझे समझ नहीं आ रहा है कि मैं क्या मुँह लेकर वहाँ जाऊँ। अपने ही घर में लोग शरणार्थी हो गये हैं।"[15]

प्रधानमंत्री के मुँह से इस तरह का शब्द सुन घायल लोगों में आशा की उम्मीद बढ़ी और उन लोगों को लगा कि सरकार बदल जाएगी और दंगा खत्म हो जाएगा। परन्तु कुछ ही दिनों बाद विदेश यात्रा से लौटने पर अपनी बातों से मुकरते हुए उन्होंने साबरमती एक्सप्रेस में लगाई जानेवाली आग के कारणों की जाँच करने के आदेश देते हुए कहा– "गोधरा में आग किसने लगाई? इस सवाल का जवाब तो चाहिए।"[16]

गुजरात में आग अभी भी खत्म नहीं हुई थी। आग अब ऐसे क्षेत्रों की ओर बढ़ रही थी जिसकी चपेट में जंगल के आदिवासी भी आ गये। वैसे इस क्षेत्र में बहुत पहले से आदिवासी को हिन्दू बनाने के लिए संघ परिवार की तरफ से एक 'वनवासी कल्याण आश्रम' का निर्माण किया गया था, जिससे आदिवासी परिवार तो पहले से आक्रोशित था और फिर इस दंगे ने उसे अपने अधिकार के लिए आगे बढ़ने की चुनौती दी। इसी कारण आदिवासी पहली बार किसी दंगा में शामिल हुए और जमकर सामना किया।

ऐसे ही गुजरात में आरक्षण विरोधी आन्दोलन गोधरा कांड से पहले हिन्दुस्तान को हिन्दू राष्ट्र बनाने के लिए हुआ था। जिसमें संघ परिवार और विश्व हिन्दू परिषद् भी शामिल था। उस समय दलित के साथ दुव्यर्वहार हुआ था। सवर्ण हिन्दू दलित हिन्दू पर अपना वर्चस्व स्थापित करना चाहते थे तब उस समय दलित हिन्दू और मुसलमान दोनों ने मिलकर सामना किया था और दोनों ने मिलकर नारा दिया था। दलित-मुसलमान भाई-भाई।

इतना करने के बावजूद सत्ता तक पहुँचने की कोई उम्मीद नहीं देखकर, उन्होंने अलग चाल चलना शुरू किया। वैसे, नेता गिरगिट की तरह रंग बदलता है। जिस तरह अपना शिकार पाने के लिए गिरगिट रंग बदलता है, उसी तरह नेता अपनी सत्ता पाने के लिए कोई कसर नहीं छोड़ता। ऐसा ही हुआ था गुजरात में आरक्षण विरोधी आन्दोलन के समय। सिर्फ सवर्ण हिन्दू को अपनाने पर सत्ता तक पहुँचना असंभव था। इसलिए दूसरी बार हुए आरक्षण विरोधी आन्दोलन में दलित-हरिजन सबको अपनाने का काम किया। इस बात को व्यक्त करते हुए सौरभ जी कहते हैं– "दलित-हरिजन सब हिन्दू है। संघ परिवार दलित-हिन्दुओं के बीच काम करने लगा। इसीलिए इस दौरान दोबारा शुरू हुआ आरक्षण विरोधी आन्दोलन दलित विरोधी होने के बजाय हिन्दू-मुस्लिम हो गया।"[17]

पत्रकार गुजरात की राजनीति की तुलना खेती से करते हुए कहते हैं कि कुछ माह पहले तक जिस बीजेपी के लिए गुजरात की राजनीति एक बंजर भूमि की तरह थी, अब वह चुनाव की हरी फसल काटने को तैयार थी। दो भागों में बँटे गुजरात से हर-हाल में राजनीतिक फायदा उठाना चाहते थे मोदी। वे चाहते थे कि समय से पहले विधान सभा भंग कर चुनाव करा दिया जाए, पर कीट की तरह मानवाधिकार आयोग और विपक्षी दल इस राजनीतिक खेत की फसल जो मोदी काटना चाह रहे थे उसे पनपने नहीं दे रहे थे। परिस्थिति अनुकूल न

होने के बावजूद, कार्यकाल पूरा होने से पूर्व ही जुलाई 2002 में विधान सभा भंग कर दी गयी। हिन्दुओं को एक जुट रखने के लिए विश्व हिन्दू परिषद ने कमर कस ली और हिन्दू जागरण का ऐलान कर दिया। यह चुनाव विश्व हिन्दू परिषद के लिए किसी धर्म युद्ध से कम न था, इसीलिए वे सुनिश्चित कर रहे थे, लेखक के अनुसार– "परिषद ने रणनीति बनाई कि चुनावों में एक भी मुस्लिम को विधानसभा की चैखट तक न पहुँचने दिया जाये।"[18]

चुनाव में विलम्ब होते देख मोदी ने बार-बार स्थगित हो रही गुजरात यात्रा को निकालने का फैसला किया। जिससे जनता के हृदय में अपनी जगह बना सकें। जहाँ जनता के बीच जाने में जोखिम था, वहीं फायदे भी कम नहीं थे। इस यात्रा का मकसद था जनता से सीधा सम्वाद। यात्रा के दौरान उन्होंने अपने मन की भड़ास निकालते हुए, एक बार फिर आग में घी डालने का काम कर दिया। उन्होंने गोधरा के अपराधियों को निशाना बनाया और यात्रा क्यों निकाल रहे हैं, इसका जवाब दिया। लेखक के अनुसार– "नरसी मेहता, महात्मा गाँधी और सरदार बल्लभ भाई पटेल के गौरव को दुनिया के सामने रखने के लिए वह यात्रा निकाल रहे हैं। लेकिन काँग्रेस को यह नहीं दिखता। दिखे भी तो क्यों? उसने इटालियन चश्मा जो पहन रखा है। यह यात्रा गुजरात को बदनाम करने वाले लोगों के दाग धोने वाली साबित होगी। मतपेटियाँ जब खुलेंगी तो गुजरात से काँग्रेस का सफाया हो जायेगा।"[19]

कोई भी नेता चुनावी यात्रा के दौरान अपना असली रूप छिपाकर, महान व्यक्ति का गुणगान करके अपनी यात्रा को सफल बनाना चाहता है। ऐसा ही मोदी ने किया था, गाँधी, पटेल का आश्रय लेकर भाजपा ने चुनावी यात्रा की थी, जिसका मकसद गुजरात के गौरव से नहीं, बल्कि मोदी के कद बढ़ाने के एक पोलिटिकल स्टंट से था। हुआ भी कुछ ऐसा ही। गुजरात के लोगों ने मोदी को सिर आँखों पर बिठाया और एक नारा दिया– "देखो-देखो कौन आया, गुजरात का शेर आया।"[20]

यह यात्रा गुजरात के साम्प्रदायिक ध्रुवीकरण का नजारा दिखला रही थी। मोदी हिन्दुओं के रक्षक के तौर पर उभर रहे थे। आदमी-औरत और बच्चों के वे ऐसे चहेते हो रहे थे कि हर कोई रथ जहाँ से गुजरता, उसके पीछे निकल पड़ते। धीरे-धीरे यात्रा का जोश ठंडा होते देख मोदी ने मुशर्रफ का बाण छोड़ा, जो ठीक निशाने पर जा लगा। जिससे गुजरातवासी उनके साथ मर मिटने के लिए तैयार थे। हिन्दू को एक करने का यह सबसे सटीक तरीका था। मोदी अपने-आप को कृष्ण समझने लगे थे। उनके खड़े होने का अंदाज कृष्ण की तरह होता। वह बोलते– "गुजरात अब माखन चोर कृष्ण नहीं रहा है। वह अब जवान हो गया है। उसके हाथ में सुदर्शन चक्र है।"[21]

जिस तरह नशा जब परवान चढ़ता है तो अपना पराया कुछ नहीं देखता, उसी तरह राजनीति में जो व्यक्ति सत्ता को पाना चाहता है वह अपने-पराये सबको नजरअंदाज करके आगे बढ़ने का प्रयत्न करता है। ऐसा ही हुआ था गुजरात चुनाव में। गुरु शिष्य के बीच आमने-सामने का टक्कर हो गया। शंकर सिंह बाघेला और मोदी के बीच गुरु-शिष्य का संबंध था, किंतु चुनाव में दोनों एक-दूसरे के प्रतिद्वंदी हो गये। बाघेला मोदी के पीछे हाथ धोकर पड़े हुए थे। मोदी द्वारा दिए गए भाषण का उल्टा जवाब देते और उनकी बातों का उजागर करते हुए बाघेला कहते हैं– "मोदी साबरमती एक्सप्रेस के जले एस-6 को छापकर पूरी दुनिया में गुजरात को बदनाम कर रहे हैं। इन संगठनों का धर्म से कोई लेना-देना नहीं है। चुनाव में ही इनको धर्म की बात याद आती है। इन्होंने आज तक हिन्दू हित का एक भी काम नहीं किया। अभी तक न तो राम मन्दिर बना और न ही उसका शिलान्यास हुआ।"[22]

निष्कर्ष

गोधराकांड के चित्रण के क्रम में उपन्यासकार बताते हैं कि अयोध्या से लौट रहे कार सेवकों के रेल-डब्बे (5-6) में आग किसने लगाये इसका निर्णय इस काण्ड की जाँच कर रहे विभिन्न न्यायाधीशों और जाँच एजेन्सियों के द्वारा भी नहीं हो सका। हिन्दू और मुसलमान एक-दूसरे को आग लगानेवाला बता रहे थे। किन्तु अब माननीय उच्चतम न्यायालय ने 2022 में इस पर अपना निर्णय दे दिया है, जिसके अनुसार, आग मुसलमानों ने ही लगायी थी। सामान्य मानव-बुद्धि भी यही

कहती है कि कार सेवक (श्रद्धालुगण) स्वयं अपने आप को जलाने के लिए अपने डिब्बे में आग कैसे लगा सकते हैं?

इस प्रकार तथाकथित बाबरी मस्जिद मुगल बादशाह बाबर के समय रामजन्मभूमि-स्थित मंदिर को तोड़कर बनायी गयी थी, जिसके पर्याप्त साक्ष्य (ध्वंसावशेष) उस स्थल की खुदाई से मिले थे। वालमीकि की 'रामायण' एवं तुलसी 'रामचरिमानस' एवं अन्य ग्रंथों में भी श्रीराम के अयोध्या में ही प्रकट होने के साक्ष्य विद्यमान हैं, इसके बावजूद यदि प्रदीप सौरभ जी हिन्दुओं की आस्था को 'तर्कों से परे' बताते हैं, तो इसे उनका निजी दृष्टिदोष ही माना जाएगा।

संदर्भ

1. रामधारी सिंह दिनकर, साहित्य मुखी, राजकमल प्रकाशन, पृ०- 27
2. नेमिचन्द्र जैन, अधूरे साक्षात्कार, वाणी प्रकाशन, पृ०- 159-160
3. प्रदीप सौरभ, मुन्नी मोबाइल, वाणी प्रकाशन, पृ०- 21
4. वही, पृ०- 21
5. वही, पृ०- 22
6. वही, पृ०- 22
7. वही, पृ०- 23
8. वही, पृ०- 23
9. वही, पृ०- 34
10. वही, पृ०- 25
11. वही, पृ०- 26
12. वही, पृ०- 26
13. वही, पृ०- 29
14. वही, पृ०- 30
15. वही, पृ०- 35
16. वही, पृ०- 36
17. वही, पृ०- 38
18. वही, पृ०- 39
19. वही, पृ०- 40
20. वही, पृ०- 40
21. वही, पृ०- 40
22. वही, पृ०- 42